सामाजिक सच पर खड़े सवाल

दुनु रॉय / ख़तरा केन्द्र

इंडिया सोशल फोरम इस बार दिल्ली में 9 से 13 नवम्बर के बीच आयोजित हुआ। यह सम्मेलन वर्ल्ड सोशल फोरम का हिस्सा है जो वर्ल्ड इकोनामिक फोरम के विरोध में जन्मा था। वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम विश्व के सबसे ताकतवर पूंजीवादी देशों के नीति निर्धारकों का समूह है। याने कि पूंजीवाद की रणनीति इसी समूह में तय होती है। एक ज़मान था जब पूंजीवाद के विरोध में सोवियत रूस का साम्यवाद खड़ा था। परंतु रूस के विघटन के साथ साथ ऐसा लगा कि अब केवल संयुक्त राष्ट्र अमरीका के नेतृत्व में दुनिया में पूंजीवाद का ही एकाधिकार है।

सरल शब्दों में पूंजीवाद और साम्यवाद के उसूलों को समझाया जाये, तो पूंजीवाद का सिद्धान्त है, ''क्षमतानुसार लेना, क्षमतानुसार देना'' अर्थात पूंजीवादी समाज में हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार समाज को देता है और अपनी क्षमता के हिसाब से लेता भी है। एक प्रकार से यह सीधा ताकत का लेन देन है – जिसकी लाठी उसकी भैंस। इसके विपरीत साम्यवाद का सिद्धान्त है ''आवश्यकतानुसार लेना, आवश्यकतानुसार देना''। याने कि समाज व्यक्ति को उसकी ज़रूरत के मुताबिक उससे व्यवहार करना है – काम, धाम, और आराम।

इसीलिये साम्यवादी रूस के खात्मे से शोषण और दमन की ताकतों को खुली छूट मिल गई। पूंजीवाद ने वैश्वीकरण का रूप धारन कर लिया – याने कि एक देश के अधिपत्य की जगह (जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं) पूंजी की केन्द्रीय संस्थाओं – जैसे कि बहु–राष्ट्रीय कम्पनियां, विश्व बैंक, और वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम – ने दुनिया भर के धन, साधन, और संसाधन पर कब्ज़ा करना शुरू कर दिया। इस दौर में पूंजीवाद से लोहा लेने का बीड़ा समाजवाद ने लिया, और इसकी शुरूआत ब्राज़ील जैसे बड़े देश ने की।

समाजवाद का सिद्धान्त है ''आवश्यकतानुसार लेना, क्षमतानुसार देना''। याने कि हर व्यक्ति अपनी हैसियत के मुताबिक समाज को देता है, जिसके ऐवज में समाज उसकी ज़रूरतों की पूर्ति करता है। समाजवाद को पूंजीवाद से साम्यवाद के सफर में बीच का पायदान माना जाता है। परंतु उसकी रणनीति क्या होगी, पूंजीवाद की टक्कर में वह क्या करेगा, कैसे वह हर इंसान की देख–रेख करेगा ? – यह सब अनुत्तरित सवाल है। साथ ही जातिभेद और लिंगभेद के दमन को कैसे समाप्त

किया जाये ? मनुष्य और प्रकृति के बीच के अंतर्विरोध को कैसे संयम में परिवर्तित किया जाये? पहले सम्पन्नता होगी या समानता? ऐसे भी कई मुख्य प्रश्न समाधान की खोज में खड़े हैं।

वर्ल्ड सोशल फोरम पूंजीवादी विरोध की गड्डी से पैदा हुई तमाम छोटी–बड़ी लड़ाइयों को एक फौलाद में ढालने की भी ज़रूरत थी। और फोरम से यह भी उम्मीद थी कि मुंह बाये खड़े सवालों के जवाब में एक पैनी तलवार भी बनेगी। क्या फोरम इन अहम कार्यों में कुछ सफलता हासिल कर पाई है? खास तौर से इंडिया सोशल फोरम में इस बार क्या कोई उत्साहवर्धक माहौल बन पाया और आगे के रास्ते को नापने के लिए कुछ और समझ बन पाई ?

ज़ाहिर है कि इसका जवाब इतना आसान नहीं। इतने बड़े सम्मेलन में किसी एक समुदाय या टुकड़ी को हर मौके पर रहना संमव नहीं। विषयों की तो कोई कमी नहीं थी। कहीं ज़मीन और जंगल पर हक की बात हो रही थी, तो कहीं और पानी और प्राणी के निजीकरण पर विचार हो रहा था। कोई महिलाओं पर अत्याचार की बात उठा रहा था, तो बग़ल में शिक्षा और बाल श्रमिकों पर बहस हो रही थी। विकास और विस्थापन, संगठित और असंगठित क्षेत्र, मज़दूर और मेगासिटी, आदिवासी और आजीविका – हर पहलू पर किसी न किसी कोने में गोष्ठी और प्रवचन, गीत और नृत्य, नारेबीज़ी और नाटक का आयोजन था।

शायद इंडिया सोशल फोरम की सबसे बड़ी उपलब्धि यही थी, कि सामाजिक जीवन के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा। इसलिए सबका हौसला बढ़ा होगा, सबको लगा होगा कि लड़नेवालें और भी हैं। फिर भी आयोजन में कमियां थी। सम्मेलन स्थान तीन अलग जगहों में बंटा था जिसकी वजह से सामूहिक कड़ी बार–बार टूट जाती थी। हर पंडाल में माईक की आवाज़ इतनी तेज़ थी कि बगल वाले को कुछ सुनाई नहीं देता था। अगर किसी कार्यशाला में लोग ध्यान देकर कुछ करना भी चाहते तो बाहर के जुलूस की झनझनाहट में विचार बिखर जाते।

उन विचारों में समांजस्य लाने से बहुत कुछ हो सकता था। जैसे कि गांव के विस्थान और शहर के विस्थापन के बीच एक जुझारू कड़ी जुड़ सकती थी। वामपंथी राजनैतिक दलों और अन्य समाजवादी गुटों के बीच एक स्वच्छ चिंतन हो सकता था। राजनीति और प्रजातंत्र के परस्पर सम्बंधों पर गहरा मंथन हो सकता था। परंतु फोरम में आये संगठनें के सामने हमेशा एक द्वंद

लहराता रहा। भाषण दें या बातचीत करें? दिल को सम्बोधित करें या दिमाग को। नेताओं का सम्मान करें या आम लोगों का?

और हमेशा की तरह जोश की आंधी ने सवालेां के टिमटिमाते दियों को बुझा दिया।